मुमुक्षु मनोरञ्जन ।

रायबहादुर
श्रीअवधबिहारीलाल एम. ए. प्रणीत ।

भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड
के
शास्त्र प्रकाश विभाग द्वारा प्रकाशित ।

काशी ।

१९२६ ईस्वी ।

मुमुक्षु मनोरञ्जन ।



रायबहादुर
श्रीअवधविहारीलाल एम. ए. प्रणीत ।



भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड
के
शास्त्र प्रकाश विभाग द्वारा प्रकाशित ।



गोपालचन्द्र चक्रवर्ती द्वारा–
भारतधर्म प्रेस, काशीमें मुद्रित ।



बनारस
१९२६ ईस्वी ।

विज्ञापन ।

इस कराल कलिकालमें मोक्षकी तो बात ही क्या है, धर्मको भी कोई नहीं पूछता। क्या शिक्षित, क्या अशिक्षित, क्या धनी, क्या गरीब, क्या शक्तिशाली, क्या शक्तिहीन, सब प्रकारके मनुष्य ही अर्थ और कामके पीछे अपनी आयु और अपना अमूल्य मानव-जीवन और अपना पुरुषार्थ लगाते रहते हैं। ऐसे विकराल समयमें जो सज्जन धर्मोन्नति अथवा मुमुक्षुत्वके विषयमें कुछ भी अपना समय लगाते हों, वे धन्य हैं इसमें सन्देह नहीं।

रायबहादुर श्रीमान् बाबू अवधबिहारी लाल साहब, जो युक्तप्रान्तके एक प्रसिद्ध डिप्टी कलेक्टर थे और अब पेन्सन लेकर कुड़वारराज्यके मैनेजर हैं, उनके धर्मभाव तथा अध्यात्म चिन्ताके फलसे जो उन्होंने 'मुमुक्षुमनोरञ्जन' नामक ग्रन्थको प्रणीत करके इस कार्य्यालयमें प्रकाशित करनेके लिये भेजा है, इसको देखकर बड़ा आनन्द होता है। यदि ऐसे ही पदस्थ तथा विद्वान् सज्जन-

गए अपना समय धर्मोन्नति और आत्मोन्नतिमें थोड़ा भी लगाया करें, तो पुनः हिन्दुजातिकी सब प्रकारकी उन्नतिमें कुछ भी बाधा नहीं होगी। क्योंकि धर्मसे अर्थ और कामकी सिद्धि अपने आप ही हुआ करती है। और मोक्ष तो धर्मका साक्षात् फल ही है।

भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड् नामक हिन्दुजातिकी स्वजातीय संस्था धर्मोन्नतिको लक्ष्य करके ही विपुल शास्त्र-प्रकाशनके अभिप्रायसे काशी जैसे धर्मकेन्द्रमें स्थापित हुई है। यदि इस धर्मग्रंथसे मुमुक्षुओंका मनोरञ्जन होगा और सनातनधर्मियोंकी सेवा कुछ भी बनेगी, तो सिण्डिकेट अपनेको धन्य समझेगा।

गोविन्दशास्त्री दुगवेकर,
भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड,
स्टेशनरोड, बनारस।

* श्रीः *

मुमुक्षुमनोरञ्जन ।

सब मुमुक्षुओंको प्रथम यह शंका होती है कि, हम कौन हैं? हमारी दशा क्या है ? हम दुःखी क्यों हैं ? और दुःख दूर कैसे होगा ? सुख क्या है ? सुखप्राप्तिका उपाय क्या है ? परन्तु सबसे पहले लक्ष्य निर्णय होना चाहिये। वह लक्ष्य मोक्ष है।

मोक्षका स्वरूप और आत्मा ।

'मोक्ष' का अर्थ है छुटकारा। जीवका अज्ञानबन्धनसे छुटकारा, सुख-दुःखसे छुटकारा, शरीर, मन और बुद्धिके अहंकारसे छुटकारा, आवागमनसे छुटकारा है अर्थात् सब कुछसे छुटकारा हो जाना ही मोक्ष शब्दका

अर्थ है । अब यह शंका होती है कि, सारे संसारसे छुटकारा होकर स्थिति कहां होगी ? अपने परमात्मरूपमें—जो अखण्ड, एकरस, निर्लेप, अचल, निष्कल, स्वतःपरिपूर्ण और सर्वव्यापक है, उसीमें स्थिति होना ही मोक्ष है और उसीको मोक्षका अधिकार है जो उपर लिखित सब वस्तुओंको छोड़नेको तैयार हो तथा वही मुमुक्षु है जो इन सबको अनित्य और तुच्छ समझे और अपने परमानन्दके अनुभवका अभिलाषी हो । इसी कारण वैराग्यको प्रथम प्राप्त करना होता है और पीछे उद्योग करना होता है ।

पर उद्योगसे पहले यह निश्चय हो जाना चाहिये कि, आत्मामें यह निरन्तर अखण्ड आनन्द है या नहीं । संसारमें इन्द्रियोंके सम्बन्धसे जो कुछ थोड़ा सुख मिलता है और दुःखका विपर्य्यय भी है उसीमें जीव लिप्त हो जाता है । विचार कर देखनेसे

मालूम होता है कि, संसारमें केवल दुःख ही है और उसीके क्षणिक निवारणको सुख मान लिया जाता है। हमारा सारा सुखका ज्ञान केवल भेदमात्रका ज्ञान है। भूखकी विकलता विना स्वादिष्ट भोजनका कुछ भी आनन्द नहीं है। भूखकी तृप्ति हो जानेपर जिह्वाका स्वाद ही नहीं रहता। कामके उद्वेग विना स्त्रीका कोई आनन्द नहीं। शीतमें ही उष्णता सुखदायी होती है। ग्रीष्ममें ही शीतल जल और पवनका आनन्द है। ऐसे सुख तथा दुःखका हमें ज्ञान होता है और विचार कर देखा जाय तो सारा इन्द्रियजन्य ज्ञान और मानसिक ज्ञान भी केवल भेदमात्रका ही है। आँख कोई स्वरूप नहीं देख सकती, जबतक अन्धेरे उजाले तथा रंगोंका भेद न हो। यदि कोई गन्ध एकतार व्यापक रहे, तो उसका भान जाता रहता है। गरमसे ठंढे पदार्थको छुओ, तो ठंढेका ज्ञान होता है। यदि सारे

पदार्थ एकसा ही उष्ण हो तो ठंढे गरमका कुछ ज्ञान ही नहीं हो सकता है; केवल उष्णताकी कमी वढ़ी स्पर्शसे जानी जाती है। इसी तरह निरन्तर सुख या आनन्दका हमें कुछ अनुभव नहीं हो सकता है।

दूसरी वात यह है कि, हम कोई संसारी पदार्थ ऐसा नहीं देखते हैं जो पूर्ण हो। सब दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं। वढ़ते घटते हैं। कोई अखण्ड नहीं, एकरस नहीं और अचल नहीं है। यह विचारने योग्य है। प्रत्येक पदार्थको इस कसौटीसे देखिये तो कोई भी पूर्ण नहीं उतरेगा और असत् विदित होगा। किसी पदार्थकी सत्यता सिद्ध होना असम्भव है। सारे संसारी पदार्थके ज्ञानमें एक तो हमारी इन्द्रियाँ हैं, दूसरा साक्षी आत्मा है, जो इन्द्रियोंके या मानसिक ज्ञानको ग्रहण करता है। इन्द्रियोंका भरोसा नहीं, वे भेदमात्र दरसाती हैं। वाहरी भावोंसे उनपर असर

पड़ता है। पर अपने आत्माके सत्य होनेमें किसीको सन्देह नहीं, न प्रमाण चाहिये। यही एक स्वतःसिद्ध पदार्थ है, दूसरा कोई नहीं। इसलिये केवल अपना आत्मा स्वतः-सिद्ध एक और अद्वितीय है। दूसरा कुछ संसारमें सत्य मानने योग्य नहीं। यह बड़ी भूल है कि, तन, बुद्धि और अहंकारको आत्मा मान रक्खा है। यथार्थमें आत्माके विचारसे उनका अस्तित्व कुछ भी नहीं। आत्माकी समीपतासे यह सब चेतन हो अपनी क्रिया करते हैं। आत्मा एकरस अकर्ता, अभोक्ता बुद्धिगुफामें स्थित है। केवल साक्षीरूपसे सब व्यापारोंको देखता है,—जैसा महाभारतमें श्रीकृष्ण महाराजने कर दिखाया। सब पाठकोंको मालूम है कि, श्रीकृष्णचन्द्रजी अर्जुनके केवल सारथी थे, रणके बीचमें रथपर स्थित सारे युद्धको देखते थे, यह प्रतिज्ञा थी कि, शस्त्र हाथमें न

छूएँगे, न वीर योद्धाओंके मारनेका उत्साह, न मरनेवालोंका शोक, पर उन्हींकी शक्तिसे अर्जुन और सब पाण्डव लड़नेमें समर्थ हुए। इसी प्रकार यह जीवात्मा इस तनमें साक्षीभावसे स्थित है। सारी इन्द्रियां और तन, मन, उसीकी चेतनासे चेतन हैं; और अपने अपने व्यापारको करते हैं। पर साक्षी आत्माका उसके साथ कुछ भी संश्लेष नहीं। जीव वस्तुतः ब्रह्म ही है केवल मायाकी उपाधिसे वह अलग बना हुआ है। और अपनेको अनात्मारूपी देह करके मानता है। जब अविद्यारूपी अज्ञान दूर हो जायगा, तो वह समझ सकेगा कि, "मैं ब्रह्म ही हूँ, देह नहीं हूँ"। यही मोक्षका स्वरूप है। जीवात्माका स्वस्वरूपमें पहुँचकर आत्मज्ञान प्राप्त करना ही मोक्ष है।

आत्मसाधन।



इसी उदाहरणपर मुमुक्षु साधकको उचित है कि, आत्माको बुद्धिगुफामें अंगुष्ठमात्र शून्य आकाशमें स्थित शरीर, मन, प्राण, बुद्धि अहंकारसे पृथक्‌रूपसे हृदयमें चिन्तन करे। यह बड़ा भारी साधन है। सब बहिर्मुखिनी इन्द्रियोंको अन्तर्मुख करके सारी नसोंको शिथिल करके अपने आत्माका चिन्तन करे। पहले स्थूल शरीर ध्यानमें आयेगा, उसके भीतर खोजो, तो प्राणपर ध्यान जमेगा, उसको छोड़ो तो मन कुछ संकल्प उठाता दिखेगा। उसके भीतर बुद्धि ध्यानमें आवेगी, उससे भी अलग होनेपर कुछ आनन्दका अनुभव होगा। इन सब पांच कोषोंको छोड़कर हृदयके शून्य आकाशपर आत्माका ध्यान जमाओ। मेरी समझमें श्रीबुद्धजी इस शून्य आकाशपर पहुँचे पर आत्मदर्शन नहीं हुआ या वह उसको बता

न सके। इस कारण बौद्धधर्मके साधक लोग इसी आकाशतक पहुँचते हैं, आत्माको भूले रहते हैं। श्रीभगवान् विष्णुकी अनन्त शय्या यह अनन्त आकाश है और विष्णु भगवान् उसपर आत्मारूपसे विराजमान रहते हैं। यही विष्णुध्यानका रहस्य है। हठयोगीगण हृदयाकाशपर अंगुष्ठमात्र आत्माका ध्यान करते हैं और मन्त्रयोगीगण अनन्त शय्यापर विष्णुका ध्यान करते हैं। वास्तवमें दोनोंका लक्ष्य एक ही है।

आत्मा सारे संसारी पदार्थोंसे तथा तन, मन और पंचकोशसे परे है, इसलिये वस्तु-दृष्टिसे शून्य है और सब वेदोंके नेति नेति कहकर सारे दृश्य और अदृश्य पदार्थोंसे विलक्षण और त्रिगुणमयी मायासे भी विलक्षण होनेसे वर्णनके योग्य नहीं है, ऐसा कहा है। परन्तु वह शून्य नहीं, सत्‌रूप है। सारे संसारकी सत्ता उसीसे है। उससे बाहर कोई

पदार्थ नहीं। 'सर्वमेवाखिलं ब्रह्म'—एक ब्रह्म ही सत् है और यह संसाररूप नाम-गुण-भेद केवल क्षणिक उद्वेल उस महार्णवका है जो अखण्ड एकरस और व्यापक है। जैसे इन्ही पंचतत्त्वसे उत्पन्न कोयला, गन्धक, सोरा आतशबाज़ी बन क्षणभर फुलझड़ी छुटी और फिर वही परमाणु अपने अपने तत्त्वोंमें मिलकर लुप्त हो गये। ऐसे ही यह दृश्य-मात्र संसार एक क्षणिक तमाशा उसी पर-मात्माके अन्तर्गत है और उसी परमात्मामें प्रकट होता है और उसीमें लय हो जाता है, सत्य केवल परमात्मा है। सृष्टिसे पहिले केवल परमात्मा अखण्ड एकरस था, सृष्टि-का संकल्प होते ही भेद प्रकट हुआ। पहिला भेद ईश्वर और प्रकृतिका है भगवान् श्री-कृष्णने ८ भेद प्रकृतिके बताये हैं। अर्थात् भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार। इनसे उत्तम प्रकृति जीवरूप

है जिसने इस संसारको धारण कर रक्खा है। प्रकृति अपने परमाणुओंसे तन, मन, बुद्धि आदिकी रचना करती और ईश्वर चेतनरूप वीर्य्य प्रदान करता है। यों तो सारे स्थावर और जंगम पदार्थमें जीवांश है ही, क्योंकि विना उसके कोई शक्ति वा गुण प्रकट ही नहीं हो सकते; उसीसे सबकी सत्ता है। ईश्वरसे यह सारा संसार व्याप्त है, उसीकी सत्ता और चेतना सबमें ओतप्रोत है। पर हर जीव वा पदार्थमें जीवनचेष्टा उसीके तन, मन, बुद्धिके अनुसार ही प्रकट होती है। यह सारा ब्रह्माण्ड, जिसके एक कोनेमें यह पृथ्वी भी है, परमात्मासे पूर्ण है। वह एक ही ब्रह्म, अपनी प्रकृतिको काममें लानेपर और अपनी प्रकृतिका द्रष्टा बनकर, ईश्वर कहाता है और पुनः अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंको अपने शरीरमें धारण करके विराट् कहाता है। वही विद्या-की सहायतासे जीवको मुक्त करता है और

अविद्याकी सहायतासे अपने प्रतिविम्बको फँसाकर जीव बना देता है। परन्तु वास्तवमें सब वही है। यही साधनका अनुभव है।

श्रीकृष्णकी आज्ञा।

मनुष्य जितना शरीरमें अहंकार रखकर उसके सुख-दुःखमें लिप्त होगा, उतनाही तमोगुणी अंधकारमें भ्रमेगा और यही मोहका कारण और यही आवरण है जो अपने निज रूपका ज्ञान नहीं होने देता। यदि मन या इन्द्रियोंमें अहंकार हुआ तो वह जीवको विषयवासनामें डालकर इधर उधर घुमाता है, और स्थिर नहीं होने देता। यह मायाकी विशेष शक्ति है जो अपने रूपमें स्थिर नहीं होने देता। यदि श्रीकृष्ण भगवान्के आज्ञानुसार सत्त्वगुणी बुद्धिका आश्रय लिया जावे, तो कर्मबन्धन नहीं हो

सकता। वैराग्य और अभ्याससे आत्मपद-की प्राप्ति हो सकती है। बुद्धि अपने सह-कारियोंमें सबसे उच्च पदवीपर है। वह मन और इन्द्रियोंको संकल्प और वेदनाओं-का निर्णय करती है; और युक्त-अयुक्त, धर्म अधर्म बताती है। उसे इस शारीरिक व्यव-हारमें पूर्ण अधिकार देकर मन और इन्द्रियोंको उसके आधीन रखे। जो कार्य हो बुद्धि विचारकर मनको आज्ञा दे, मन इन्द्रियोंको प्रेरणा करे और वह निष्काम व्यवहार करे, यही रीति निष्काम कर्मकी है। जिस मनुष्यकी दृष्टिमें तन, मन, बुद्धि और आत्माका विवेक सदा विद्यमान रहे, जो फल और सिद्धिको आशाको छोड़कर काम करता है, जिसके सारे कर्म विषय-वासनासे वर्जित हैं, और जिसने सारे कर्म ज्ञानाग्निसे भस्म कर दिये हैं, उसे पंडित कहते हैं। ऐसे कहा भी है कि, जो फलकी

इच्छासे कर्म करता है वह अज्ञानी है। जो मनुष्य बुद्धिके आश्रयसे कर्म नहीं कर सकते, और जो बुद्धिके धोखे मनके पीछे चल देते हैं, इन्द्रियोंको यथायोग्य भीतरसे चला नहीं सक्ते, और विषयोंसे आकर्षित इन्द्रियोंके संग लिप्त होते हैं, और अपनेको बड़ा सुखी मानते हैं, उनके लिये धर्मशास्त्र वेद और पुराणविहित कर्मोंकी ही आज्ञा है, तथा नियम, व्रत, और तप वताये हैं। इन धर्मकर्मोंको महर्षियोंने ऐसे विधान किये हैं कि, उनसे विषयवासना दूर होनेके साथ ही परोपकारके लिये पुरुषार्थ वढ़ता है। वह मन और इन्द्रियोंका रोचक नहीं, परन्तु क्लिष्ट हैं, और मन इंद्रियोंको थकाकर शिथिल करते हैं, कि वह शान्त हो जावे और निजकामना छोड़कर परोपकारी कर्मका अभ्यास हो जावे। परन्तु धार्मिक और परोपकारी कर्मोंमें भी अहंकार

और पारलौकिक फलको आकांक्षा रहती है, इसलिये वह भी बन्धनकारी हो सकते हैं। बिना ज्ञानके निष्काम कर्म दुर्घट है। आत्मज्ञानके लिये किसी कर्मका प्रयोजन नहीं, परन्तु जबतक अपने आत्मस्वरूपके ध्यानमें निरन्तर न लगा रहे, तबतक मन और इंद्रियोंको बुद्धिकी आज्ञानुसार धर्मकर्म-में निष्काम होकर लगाये रहना चाहिये, नहीं तो वह विषयकी ओर दौड़ेंगे। परन्तु यह ध्यान रहे कि, मन और इन्द्रियोंसे कर्म कराते हुए हम केवल निःसंग साक्षीभावसे रहें।

तात्पर्य्य यह है कि, तप, व्रत आदि द्वारा शरीरके मलकी शुद्धि होती है। उससे मन शान्त होकर मनमें सत्त्वगुण बढ़ता है तब आत्मज्ञान प्राप्ति और वासनका नाश होता है, तब श्रीभगवान्‌की आज्ञाके अनुसार निष्काम कर्मयोगका अधिकारी साधक बनता है, जो श्रीभगवद्गीताका रहस्य है।

सृष्टि-रहस्य ।

—:❀:—

ब्रह्मकी आश्रिता उनकी शक्ति त्रिगुण-मयी मायाका ही नाम प्रकृति है। उस प्रकृतिसे प्रथम आकाशतत्त्व उत्पन्न हुआ। आकाशसे वायु उत्पन्न हुआ, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथिवी उत्पन्न हुई। इन पाचों तत्त्वोंमें आकाशके सात्त्विक अंशसे श्रवणेन्द्रिय उत्पन्न हुआ। वायुके सात्त्विक अंशसे स्पर्शेन्द्रिय उत्पन्न हुआ। अग्निके सात्त्विक अंशसे चक्षुरिन्द्रिय उत्पन्न हुआ। जलके सात्त्विक अंशसे रसनेन्द्रिय और पृथिवीके सात्त्विक अंशसे घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न हुआ। इन पाचों तत्त्वोंके समष्टि सात्त्विक अंशसे मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार उत्पन्न हुए। इनमें संकल्पविकल्प करनेवाला मन, निश्चय करनेवाली बुद्धि, स्मरण रखनेवाला चित्त और अहंकार

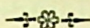
करनेवाला अहंकार है। इन पांच तत्त्वोंमेंसे आकाशके राजस अंशसे वागिन्द्रिय उत्पन्न हुआ। वायुके राजस अंशसे पाणीन्द्रिय उत्पन्न हुआ। अग्निके राजस अंशसे पादेन्द्रिय उत्पन्न हुआ। जलके राजस अंशसे उपस्थेन्द्रिय उत्पन्न हुआ और पृथिवीके राजस अंशसे गुदेन्द्रिय उत्पन्न हुआ है। इनके समष्टि राजस अंशसे प्राणादि पांच वायु उत्पन्न हुए। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय आदि पांच भी उन्हीं वायुओंके अन्तर्गत हैं। इन पांच तत्त्वोंके समष्टि तामस अंशसे पंचीकृत पंच-महाभूत होते हैं। इन पंचभूतोंमेंसे एकका अर्धभाग और बाकी चारका अष्टमांश मिलनेपर उसको पंचीकृत पंचमहाभूत कहते हैं। उदाहरण रूपसे समझ सकते हैं कि, पंचीकृत आकाशमें आकाशका अंश आधा और अन्य चार तत्त्वोंके आठ भाग

का एक एक भाग है। इसी प्रकार प्रत्येक पंचीकृत पंचमहाभूतोंको समझना चाहिये। इन्हीं पंचीकृत पंचमहाभूतोंसे प्रत्येक ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें चौदह भुवन होते हैं। और प्रत्येक ब्रह्माण्डमें उद्भिज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज ये चार प्रकारके शरीर उत्पन्न होते हैं।

ये चारों पिण्ड पांच कोषोंमें विभक्त होते हैं यथा अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष और आनन्दमयकोष। स्थूल शरीरको अन्नमयकोष कहते हैं। प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान तथा पंच कर्मेन्द्रिय मिलकर प्राणमयकोष होता है। पंच ज्ञानेन्द्रिय और मन मिलकर मनोमयकोष कहाता है। पंच ज्ञानेन्द्रिय और बुद्धि मिलकर विज्ञानमयकोष कहाता है। जीवत्वका कारणभूत, आत्माका अज्ञान स्वरूप प्रिय,

मोद, प्रमोद आदि भावोंसे युक्त अवस्था आनन्दमयकोष कहाती है। इन पांचों कोषोंसे जीवात्मा ढका रहता है। जब ज्ञानी यह समझ लेता है कि, मैं आत्मारूप हूँ और ये पांचो कोष मैं नहीं हूँ, तभी वह मुक्त होकर सृष्टिके परे पहुँच जाता है। और जबतक अज्ञान और पूर्व अभ्यासके कारण वह यह समझता रहता है कि मैं पाचों कोषका पुतला हूं, मैं शरीर हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं धनी हूँ, मैं दरिद्र हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, तभीतक जीवकी बन्धन दशा रहती है और वह आवागमन-चक्रकी भूलभुलैयेमें घूमता रहता है। यही सृष्टिका रहस्य है। और जो सृष्टिका क्रम व्यष्टिमें है वहीं समष्टि ब्रह्माण्डमें भी है।

योगसाधन ।



जीवात्मा और परमात्माको एक कर देनेका नाम योग है। चित्तवृत्ति निरोध करके पहले आत्माको पहचाना जाता है, उसके बाद यह समझमें आता है कि, आत्मा यह है, अनात्मा यह है। तब स्वतः जीवात्मा और परमात्माकी एकता हो जाती है। विचारसे आत्मा और परमात्माको एक कर देनेको राजयोग कहते हैं। अपने शरीरमें ब्रह्मशक्ति जो कुण्डलिनी है, उसको जगाकर अपने शरीरमें जो आत्मा है, उसमें लय कर देनेको लययोग कहते हैं। स्थूल शरीरको क्रियाकी सहायतासे चित्तवृत्तिका निरोध करके योगशक्ति प्राप्त करनेको हठयोग कहते हैं। और मन्त्ररूपी नाम तथा इष्टध्यान इन दोनोंकी सहायता अर्थात् नामरूपकी सहा-यतासे चित्तवृत्तिका निरोध करके योगशक्ति

को प्राप्त करनेको मन्त्रयोग कहते हैं। इन्हीं चारों योगोंकी सहायतासे वहु प्रकारके साधन शास्त्रोंमें वर्णित हुए हैं।

एक यह भी साधनकी रीति है कि, आत्माको तन, मन, प्राण और बुद्धिका साक्षीभावसे निरूपण करे। अपने शरीरको देखे, उसको सब काम करते हुए उसकी चेष्टाओंको देखे और अपनी आज्ञामें रखे। अपनी विषय-रुचिसे वह एक तिलभर भी न चल सके। जो उसके निर्वाहके लिये आवश्यक हो, बुद्धिकी आज्ञासे प्राप्त करे। इसी तरह प्राणोंपर ध्यान रखे, यह भी एक योगका अभ्यास है। मन और प्राणोंका परस्पर सम्बन्ध है। प्राणोंको रोक देनेसे मनकी गति वन्द हो जाती है। योगी प्राण ब्रह्माण्ड (मस्तक) में चढ़ाकर ले लेते हैं तो मन और तनकी सारी वृत्ति रुक जाती है। ज्ञान या भक्ति मार्गमें मन इस तरह नहीं मारा जाता, परन्तु प्राणकी सूक्ष्म-

गति और श्वांस किञ्चित निरोध किया जाता है जो बड़ा उपकारी है। प्राणके पश्चात् मनको देखना चाहिये कि, वह क्या संकल्प करता है? वह बिलकुल अधिकार-से बाहर हो रहा है, स्वच्छन्द हो बिना बुद्धिकी आज्ञाके रोचक, भयानक और घृणित पदार्थोंको बराबर सामने लाता रहता है। इसको जब देखना शुरू करोगे कि क्या विचारता है, तो वह भागेगा, फिर भी धोखा देकर कोई और विचार लावेगा। पर निर-न्तर पीछा करते करते शिथिल हो बैठेगा। तब उसे बुद्धि द्वारा उत्तम और उपकारी विचार देना चाहिये। यदि आपको वैराग्य है तो मन जल्दी शांत होगा, क्योंकि, जितना राग, द्वेष कम होंगे मनकी आसक्ति विषयोंमें उतनी ही कम होगी और उसकी चंचलता घट जायगी। इस प्रकारसे मनको बुद्धिके विचार द्वारा ही मारना चाहिये।

परन्तु याद रखना चाहिये कि हठयोगी लोग जो बलपूर्वक अपने प्राणको ब्रह्माण्ड-में चढ़ाकर जड़ समाधि ले लेते हैं, और कभी २ मिट्टीमें अपनेको गड़ाकर तमाशा दिखाते हैं वह योगविघ्न है, ज्ञान प्राप्तिका सहायक नहीं है। जिस योगमें आत्मज्ञान बढ़ता है, और विचार बना रहता है, वही योग उपकारी है। राजयोगमें सांसारिक विचारोंसे मनको हटाकर बुद्धिसे ब्रह्म विचारका अभ्यास करना होगा और इन्द्रि-योंपर पूर्ण अधिकार स्थापन करना पड़ेगा। इस रीतिसे तन, प्राण और मनकी वृत्तियों-को साक्षी भावसे देखते रहने और उनको सहकारी जानकर यथोचित काम लेनेसे यह भाव होने लगेगा कि, यह मुझसे विलग है और मैं उनका साक्षी उनसे अलग हूं। तब निःसंग भावको प्राप्त होगा। पूर्ण वैराग्य होगा। तन और मनके रोचक पदार्थोंसे

अपना कुछ संग न रहेगा। विवेककी पूर्ति होगी। ज्ञानका सम्भव होगा। हमारा विचार है कि विवेक बिना विराग नहीं हो सकता। जिन पदार्थोंकी तनको आवश्यकता है, और उनके मिलनेसे तन और मनको संतोष होता है कैसे उनसे विरति होगी? केवल उनमें घृणा विचारनेसे या थोड़े दिन छोड़ देनेसे तन-का स्वभाव नहीं बदल जाता। जबतक तनको भूख और प्यास है, जिह्वामें स्वाद है, तबतक अन्न और जलको रुचि रहेगी। अरुचि कैसे होगी? जिस विवेकीको शरीर अपनेसे अलग दृश्यवत् हो रहा है, और वह उसकी भूख प्यास वा तृप्तिको दूसरेकी भाँति देखते हैं, उसके दुःख वा सुखको ऐसे देखते हैं जैसे अपने किसी मित्र वा प्रियतमको हो तो वह निःसंग हो राग और द्वेषसे रहित वैराग्यको पायेंगे। यह बड़ा वैराग्य है कि अपने शारीरिक व मानसिक दुःखको साक्षी भावसे देखें और

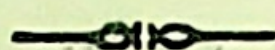
आप दुःखी न हो। इससे भी अधिक अभ्यास सुख सम्बन्धी है। जब कोई सुख तन वा मनको प्राप्त होता है तो क्षणमात्र क्षोभ और उद्वेगकी शांति होती है—चाहे वह क्षुधा पिपासाकी शांति द्वारा हो, वा शीतोष्णकी निवृत्ति द्वारा हो, वा मल मूत्र वीर्य आदि त्याग द्वारा हो, क्षणमात्र मन व इन्द्रियोंका उद्वेग शान्त होता है और आत्मा अपने रूपमें स्थिर होता है। इसीसे सुखका अनुभव होता है, पर यह समझना बड़ा भूल है कि, आनन्द किसी विषय वा पदार्थमें है। बड़े आनन्दमें मनुष्य अपने हृदयपर हाथ रख कर आनन्दमें शिथिल हो सकता है, अहा! हा! हा! मैं बड़ा आनन्दित हूँ, पर यह आनन्द और शान्ति केवल अपने स्वरूपमें स्थितिका है। जब तन और मनके उद्वेगसे शान्त हो कर जीवात्मा क्षणमात्र अपने स्वरूपमें हृदयाकाशमें स्थित होता है उस समय आत्माके

आनन्दकी उपलब्धि होती है, जिसका आनन्द उस मूढ़ अज्ञानीको भी हुआ जो लड्डू पेड़े स्त्री पुत्रादि विभूषित और ऐश्वर्य-में सुख माने हुए है। उनके संयोगसे अवश्य क्षणमात्र शान्ति हुई, पर उस शान्तिको पहिचाना नहीं, विषयसे अलगाया नहीं, उसको कुछ देर ठहराया नहीं। देखो कैसा धोखा हम खा रहे हैं! सारे सुख और सच्चे आनन्दकी खानि हमारे हृदयगुफामें, हमारे आत्मामें प्राप्त है। उसे छोड़ बाहरी पदार्थोंमें खोजते, टक्करें मारते फिरते हैं। वह पदार्थ भी अपने स्वरूपकी ओर ही आनन्द बताते हैं कि हृदयमें अपने आत्मामें है, पर हमको नहीं सूझता। यही कारण है कि अभिलषित पदार्थोंके मिलनेपर भी तृष्णाकी शांति नहीं होती। सुखका स्वरूप जाना नहीं, उसका कारण पहिचाना नहीं, विषयोंके धोखेमें जो स्वाद एक बार पाया उससे अधिकतरकी

आकांक्षा रही, तृप्ति कहांसे हो ? यदि विवेक ज्ञान द्वारा तीन अभ्यास अपने व्यवहारके सङ्ग मनुष्य करता रहे तो आत्माका भान होना चाहिये। (१) तन और मनकी सारी चेष्टाओंको साक्षी भावसे देखता रहे। (२) शारीरिक वा मानसिक दुःखको भी साक्षी-भावसे देखे जो कि, दूसरेके शरीर वा मनमें हो रहे हैं और (३) सुखके समय ध्यान रखे कि, शान्ति मिली और अपने आत्मस्व-रूपका दर्शन हुआ और उसे जितना होसके स्थिर रखे। सारे योगका तत्त्व यह है कि, जीवात्मा तन, मन, इन्द्रियादिके उद्वेगसे अलग होकर अपने स्वरूपका अनुभव करे जिसके भक्तियोग और ज्ञानयोग प्रचलित साधन हैं। पर ज्ञानीजन भक्ति मार्गमें अपना तन मन अपने इष्ट-देवमें ऐसे अर्पण कर देते हैं कि, अपना भान न रहे। भक्ति और उपासना ज्ञानके

प्रकाशमें ऐसी हो सक्ती है कि, जो परम पदको पहुंचावे। सारांश यह है कि, जिस सुखके लिये मनुष्य पागल होकर संसारवनमें घूमता रहता है, जिस सुखके लिये कस्तूरी मृग जैसा दौड़ता रहता है, वह सुख आत्मा-में ही है। शरीर या इन्द्रियोंमें नहीं। मृग जिस सुगंधिके लिये छटपटाता रहता है, वह सुगन्धि उसके शरीरमें ही नाभीसे निक-लती है। किसी सुखके अनुभवके समय मन स्वतः समाधिस्थ होता है, उस समय आत्माका जो आनन्द है, वही प्रकट होता है, सुतरां आनन्द विषयमें नहीं है। इसी ज्ञानको भक्त लोग अपने आपको भगवान्‌के चरणोंमें लगाकर अनुभव करते हैं। और ज्ञानयोगी नित्यानित्य विचार द्वारा अनुभव करते हैं। यह उत्तम साधन है।

धर्म और उसके अंग।



मुक्तिके पथमें चलते हुए धर्म परम सहायक है। जिससे अभ्युदय और मुक्ति होती है, ऐसे सब प्रकारके साधनोंको धर्म कहते हैं। धर्मके प्रधान तीन अंग हैं यथा—दान, तप और यज्ञ। यज्ञके भी तीन भेद हैं यथा-कर्मयज्ञ, उपासनायज्ञ और ज्ञानयज्ञ। इसी कारण वेदके भी तीन काण्ड हैं, यथा कर्म-काण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञान काण्ड। कर्म, उपासना और भक्ति ज्ञान प्राप्तिके उपाय हैं। यज्ञ, दान और तप अवश्य कर्तव्य हैं। साधन अवस्थामें केवल ऐसे ही कर्म जिनसे दूसरोंका उपकार हो और अपनी शुद्धि और सत्यता दृढ़ हो, करना चाहिये। वेद और शास्त्रोंमें इनका वर्णन है और भगवान् श्रीकृष्णने भी गीतामें यही वर्णन किया है, परन्तु यह सब कर्म

विना अहंकार वा कामनाके करना चाहिये। तन और मन अपने अपने इष्टदेवको श्रद्धा विश्वास पूर्वक अर्पण कर दिया जावे। यह प्रतिज्ञा हो कि, सिवाय ईश्वरी सेवाके और कुछ न करेंगे, न विचारेंगे। ईश्वर सबके हृदयमें व्यापक है। शिक्षित बुद्धिद्वारा ईश्वर सदा कर्तव्य अकर्तव्यकी आज्ञा देते हैं। यदि शंका हो तो गुरुजन और विद्वान् शास्त्रानुसार ईश्वराज्ञा बता सक्ते हैं। ऐसे कर्म ईश्वरीय सेवा समझ कर निरहंकार भक्ति पूर्वक करे तो बन्धन न पावेगा और मन शुद्ध होगा। इसको पूर्णरीतिसे स्वामी तुलसीदासजीने अपनी रामायणमें बाल-मीकिजीके संवादमें वर्णन किया है। देवो-पासना दूसरा कर्तव्य है। हां कोई अपनी रुचिके अनुसार अपना इष्टदेव निश्चय करता है, और उसमें प्रेम करता है। वही इष्टदेव अपना लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति हरकोई

चाहता है। शास्त्रोंमें लिखा है "देवो भूत्वा देवम् यजेत्" अर्थात् तद्रूप उपासना होनी चाहिये। सेव्य सेवक भाव व सखा भावमें द्वैत भाव बहुत है। भक्त भाव उत्तम और याचक भाव निकृष्ट है, कारण यह कि, शास्त्र-का सिद्धांत है कि, जिस भावका, जिस देव-का पूर्ण श्रद्धासे चिन्तन, मनन तथा निदिध्या-सन करोगे, तद्रूप हो जाओगे। परन्तु याचक भावमें दो मूर्ति अपने सामने रखते हो, एक इष्टदेव बड़े प्रभाव और शक्तिवाले, दूसरी दीन दुःखी याचककी जो उपकारार्थ याचना करता है। इष्टदेवका आवाहन अपने हृदयमें करके उनके प्रभाव और प्रताप अनु-भव अपने हृदयमें करते करते तद्रूप हो जाओगे। यदि निरंतर विचारसे तद्रूप उपा-सना द्वारा तुम अपने इष्टदेवका अनुभव हृद-याकाशमें कर सको तो अपने निज आत्माकी जगह अपने इष्टदेवको ही स्थापन कर लोगे,

और वेदान्तियोंका कहना सिद्ध हो जायगा कि तुम जीवात्मा ईश्वर ही हो। अपना आत्मा ईश्वर ही है, इसका भक्ति रीतिसे भी निश्चय रखो। जब तुम्हारे ईश्वर इष्टदेव इस शरीर मन बुद्धिका मालिक हृदयगुफामें स्थित हैं तो उन्हींकी प्रेरणासे तन, इन्द्रिय, मन और बुद्धि सारे कर्म करेगी और सब कर्म परमेश्वरकी प्रेरणासे शुद्ध और ईश्वरीय होंगे, स्वार्थ और पापकी सम्भावना ही न रहेगी, और तुम विपाप्मा, विरज और अमृतरूप अर्थात् अमर हो जाओगे। हर कोई अपनी रुचि और समझके अनुसार ईश्वरका वह रूप अपना लक्ष्य बनाता है जो सबसे ऊंचा, स्वच्छ व हितकारी उसे जान पड़ता है। जो मुमुक्षु हैं वह परब्रह्मको अपना इष्टदेव जानते हैं, पर वह निराकार, निर्गुण और अचिन्त्य हैं, उपासना और भक्तिका विषय नहीं हैं। उपासनामें इष्ट चिंतन कई प्रकारसे किया

जाता है। यथा निर्गुण ब्रह्मोपासना, सगुण पंचोपासना, अवतारोपासना आदि। ये ईश्वरोपासना हैं ? क्योंकि वही ईश्वर सगुण तथा निर्गुण भी हैं। शास्त्रोंमें जो मूर्त्तिपूजा, जलमें पूजा, अग्निमें पूजा, मण्डलमें पूजा, शालग्राम शिलामें पूजा, नर्मदेश्वरमें पूजा, यन्त्रमें पूजा इस प्रकारसे अनेक स्थानोंमें पूजाकी विधि बताई है और शरीरके हृदय आदि स्थानोंमें भी पूजाकी विधि बताई है, तीर्थ स्थानोंमें पूजाकी विधि बताई है, ये सब उन पदार्थों या स्थानोंकी पूजा नहीं है। हिंदुशास्त्र मूर्त्ति आदिकी पूजाकी विधि नहीं बताता, मूर्त्ति आदिमें पूजाकी विधि बताता है। व्यापक प्राणमयकोषमें मनकी शक्तिसे पीठ उत्पन्न किया जाता है। ये सब स्थान पीठरूप हैं। उसी पीठमें सर्व-व्यापक परमात्माकी पूजा की जाती है। पीठका रहस्य आजकल सायन्सवाले भी

मानने लगे हैं। दो तीन मनुष्य जब एक तीन पाएवाले टेबुलको हाथ मिलाकर छुते हैं, तब टेबुल अपने आप हिलने लगता है। और उससे प्रेतादिसे सम्बन्ध होकर टेबुल द्वारा जवाब सवाल होने लगते हैं। इस प्रकारसे सायन्सवालोंने बहुत सी युक्तियां निकाली हैं जिससे सिद्ध होता है कि, प्राणमयकोषसे पीठ बना करता है। जब पीठके साथ प्रेतलोकका सम्बन्ध हो सकता है, तो देवलोकका भी हो सकता है। और भगवान् तो सर्व व्यापक हैं पीठ द्वारा उनसे सम्बन्ध स्थापन करना तो सुगम ही है। इस कारण पीठकी सहायतासे ईश्वरकी पूजा करना, मनकी सहायतासे ईश्वरकी पूजा करना आदि सब उपासनाके भेद हैं।

नित्यकर्म, नैमित्तिककर्म, काम्यकर्म आदि कर्मोंके द्वारा और दान तपादिके द्वारा आधिभौतिक शुद्धि अर्थात् शरीरके मलकी शुद्धि

होती है। योग और भक्तिकी सहायतासे उपासना द्वारा आधिदैविक शुद्धि अर्थात् मनके विक्षेपका नाश होता है और आत्मा अनात्माके विचार द्वारा तत्त्वज्ञानका उदय होकर मुमुक्षु मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। यही सब साधनोंका अन्तिम फल है।

गुरु और अवतारोपासना।

परमब्रह्म सर्वव्यापक हैं एक जर्रे २ में, आकाश पातालमें, जड़में, चेतनमें वे एकरससे विराजमान हैं। उनकी अधिक कला जहां प्रकाशित हो, वही अवतार हैं। और गुरुमें तो उनकी कला विद्यमान रहती है, इसलिये गुरु भी पूजनीय हैं। अवतार कई प्रकारके होते हैं। श्रीभगवान् कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द पूर्णावतार थे। अवतारपूजा और

गुरु पूजासे भी परम कल्याण होता है यदि ज्ञानकी रीतिसे उनके बाहरी और भीतरी और निज स्वरूपका विचार किया जावै। जैसे श्रीकृष्ण भगवान् किसीके इष्टदेव हैं। पुराणोंमें बड़े विस्तारसे दिखाया है कि, बहुतसे ऋषियोंके शाप, तथा देवताओंके वरदान पूर्ण करनेको और दुष्टोंसे पृथ्वीका भार उतारनेको परमात्माने संसारमें जन्म लिया था। उनका निजस्वरूप वही सर्वव्यापी, अखण्ड, निरञ्जन, निर्विकार था पर हमारे दृष्टिगोचर होनेके अर्थ और इस स्थूल संसारमें कर्म करनेके अर्थ उन्होंने देह धारण की और उसी देहके अनुसार संसारके कल्याणार्थ सारे कर्म किये। रूप मनका अद्भुत आकर्षण करनेवाला है। उसका प्रभाव और पराक्रम अप्रमेय है पर निज स्वरूप सबसे अद्भुत वही परब्रह्मका है, तो श्रीकृष्ण महाराजका बहारी स्वरूप प्रथम

भक्ति उत्पन्न करने और ध्यान जमानेको उपयोगी है। पर हृदयमें चिन्तन उनके गुण और प्रभावका करना चाहिये, और उसके उपरान्त यही विचारना चाहिये कि, वह साक्षात् परब्रह्म हैं। इसी रूपमें हमें दर्शन देने आये हैं। इस रीतिसे अपने इष्टदेवकी अपने आत्मासे एकता और आत्माकी परब्रह्म परमात्मासे एकता अनुभव कर सकते हो। इस एकता निरूपणकी तीन रीति है। एक तो जैसी श्रुति कहती है कि, तत्त्वमसिसोहम् इन बातोंका अनुभव करना कि, हमारा जीवात्मा सर्वव्यापी परमात्मा है। यह छोटेसे बड़ा बनाता है पर हम नित्य व्यवहारमें अपनेको तुच्छ और निर्बल, सीमाबद्ध देखते २ यह निश्चय नहीं कर सकते कि, हम परब्रह्म हैं। भक्ति मार्ग दूसरी रीति बताती है कि, इष्टदेवको प्रेम, भक्ति और विश्वाससे अपने आत्माके स्थान पर हृदयमें स्थापन करके

उनके असली परब्रह्म रूपका ध्यान करो। इस ध्यानमें दृढ़ता इस विचारसे होती है कि, इष्टदेवका पूर्ण ध्यान जमाकर विचार करो कि, वह अपने देहको जो अपनी इच्छासे धारण की है उस देहके संबन्धियोंको किस रीतिसे देखते होंगे, जैसे कोई किसी समयके अनुकूल वस्त्र धारण कर कोई खेल करने आता है। लीला विग्रहकी भांति देखते हैं। जब अपने ईश्वरीय रूपको विचारते हैं तो सारे संसारके मालिक सबमें व्यापक अनुभव करते हैं। फिर उन सबसे मुंह फेर कर अपने चिदानन्द रूपमें स्थित होते हैं। वे अवतार हैं, संसारी खेल करते हुए उससे कुछ संसर्ग नहीं रखते परंतु यथेच्छ अपने ईश्वरी रूपमें वा परमात्मरूपमें स्थित रहते हैं। जो मनुष्य भूला हुआ है। यदि उससे यह भी न बने तो साक्षात् अपने गुरु महाराजका ध्यान करे, योगासनमें शान्तिपूर्वक स्थित होकर

ध्यानमें अपने आत्माको परमात्मासे मिलाये, शरीर और मनसे निःसंग तथा संसारसे वेसुध होकर चिन्तन करे, तद्रूप विचारते २ तुम्हारी भी वही हालत हो जावेगी। यही भक्ति द्वारा उपासना है। अपने गुरु साक्षात् भगवान्के अवतार ही हैं, जो ईश्वरमें एक-तान हो रहे हैं। सबके गुरु महायोगेश्वर श्रीशंकर हैं जो सदा समाधिमें स्थित परमात्माके ध्यानमें मग्न हैं। शरीरकी इतनी भी सुध नहीं कि, उसपर मिट्टी जम कर घास उगी है सर्प लोट रहे हैं। कभी समाधिसे जागे तो ओघां नींदीमें जिस भक्तने जो मांगा, दे दिया। पुनः समाधिमें स्थित हैं। यह किसका ध्यान करते हैं? अपने ब्रह्मरूप आत्माका, शिवजीका यह ध्यान बड़ा उपयोगी है। इस कारण वे जगद्गुरु कहाते हैं। राम, कृष्णादिक अवतार और अपने गुरुदेवके आदर्शको अपने सम्मुख रखकर उपासना और ज्ञान

मार्गमें अग्रसर होनेसे मुक्तिका पथ सरल हो जाता है।

शक्तिका विकाश।

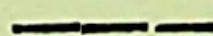
यह संसार ब्रह्मशक्ति महामयाका विकाश है। ब्रह्मशक्तिका विकाश यह संसार है। उसकी लीलाभूमि सब दृश्य प्रपंच है। सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण उसी जगज्जननी ब्रह्मशक्तिके ही अपूर्व गुण हैं। जैसे मुझमें और मेरे बोलनेकी शक्तिमें भेद नहीं है वैसे ब्रह्ममें और ब्रह्मशक्तिमें भेद नहीं है। ऐसा मानकर जगत्को शक्तिमय देख। अपने सब कार्योंको भी शक्तिमय देखें। यह उपासना और ज्ञानका उच्च अधिकार है।

ब्रह्मशक्ति महामाया, एक ओर पुरुष, दूसरी ओर स्त्रीधारारूपसे बन जाती है। वही

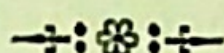
महामाया पुरुष और स्त्री बन कर सृष्टि करती है। वही महामाया विद्या और अविद्या बन कर जीवको मुक्त करती है और फांसती है। वही महामाया आकर्षण और विकर्षण शक्ति बनकर सृष्टि, स्थिति, लयक्रिया करती है। वही महामाया अन्तःकरणमें राग और द्वेष बन कर आसक्ति और विराग उत्पन्न करती है। सब जगह भीतर और बाहर द्वन्द्वशक्ति बन कर वही विराजमान है। प्रेमराज्यमें भी इसी शक्तिकी लीला दिखाई देती है। भक्ति-पक्षमें प्रेमका रूप विचारणीय है। उसमें भी तन और मनके भंवरसे सत्यप्रेमका अनुभव नहीं होता। परंतु यह निश्चय है कि, स्थूल पदार्थोंका संसर्ग शरीरसे इन्द्रिय द्वारा होता है, और मानसिक सुख प्रशंसा, यश, कीर्ति आदिका अनुभव मन हीसे होता है। ऐसे ही बुद्धि अपने विषयका अनुभव करती है पर आत्माका उनसे कुछ संसर्ग

नहीं। वह केवल साक्षीमात्र द्रष्टा है। आत्माकी ओर मन और बुद्धिकी जो रति है, वही प्रेमका उत्पादक है। वही राग, स्नेह, श्रद्धा, प्रम और भक्ति है। दूसरी जो उससे विरुद्ध वृत्ति है, वह अप्रेम और द्वेष है। एक मनको ईश्वरके अभिमुख करता है, दूसरा हटाता है। यही सब द्वन्द्वमूलक प्रकृति-के भेद हैं। हर एक विभक्त पदार्थ अपने पर्यायी पदार्थसे मिलने और पूर्णता प्राप्त करनेका उद्योगी है। यही उद्योग सारी शक्तियोंकी उत्पत्तिका कारण है। इसका उदाहरण विद्युत् शक्तिसे अच्छा मिलता है, विद्युत् सारे पदार्थोंमें विद्यमान है; पर उसके दो भाग होते हैं। परस्पर मिले रहनेसे अदृश्य और शान्त रहते हैं। युक्तिसे उनका विभाग होनेपर दो प्रकारकी विद्युत् प्रकट होती है और फिर एक दूसरेसे मिलनेकी कोशिश करती है। यह विजली दो अलग

तारोंसे ले जाते हैं. और जहां शक्तिसे काम लेना हुआ, दो ओरसे दोनोंको प्रवेश कराते हैं। वह विजली वड़ेसे वड़ा काम करके फिर मिल जाती है। चक्की उससे चलती है। पंखे, रेल, कलें वगैरः सब उसीसे चलते हैं और जहां दोनों मिलीं, शक्ति अदृश्य हो जाती है। इसी भांति शरीर अपूर्ण पदार्थोंसे बना, अपनी पूर्तिके अर्थ अपने पर्यायी पदार्थोंको आकर्षण करता है तथा विपरीत पदार्थोंसे भागता है। इसी रीति-से इन्द्रियोंका रागद्वेष सम्बन्ध विषयोंसे होता है पर आत्मा निःसंग है। यही सब व्यापक द्वन्द्वशक्ति जवतक रहती है, तवतक सृष्टि रहती है। इसीको वैषम्यावस्था प्र-कृति कहते हैं। जब ब्रह्मशक्ति अपने द्वन्द्व भावको छोड़कर एकतान हो जाती है, तभी मुक्तिका उदय होने लगता है।



प्रेम और भक्ति।



किसीको अपना समझना और अपना स्वार्थ भूलकर दूसरेमें लवलीन होना यही प्रेमका स्वरूप है। शास्त्रकारोंने इस रागात्मक प्रेमके अनेक भेद कहे हैं। अपनेसे छोटेमें जो राग है यथा पुत्र, कन्या, शिष्य आदिमें उसे स्नेह कहते हैं। अपनेसे बराबरमें जो राग हो यथा स्त्रीमें, मित्रमें, सखीमें उसको प्रेम कहते हैं। अपनेसे बड़ोंमें जो राग होता है यथा मातामें, पितामें, गुरुजनोंमें, उसको शास्त्रकारोंने श्रद्धा कहा है और भगवान्‌में जो राग होता है उसीको भक्ति कहते हैं। प्रेममार्गमें केवल अपनेको भूलना पड़ता है और दूसरेको स्मरण रखना पड़ता है। इस मार्गमें तपकी कठिनता नहीं है, ज्ञानको गम्भीरता नहीं है, कर्मका परिश्रम नहीं है। इस कारण प्रेम और

भक्तिका मार्ग बड़ा सुगम कहा गया है। अब प्रेमराज्यको विचारो। इन्द्रियकी विषयसे प्रीति वा एक शरीरकी दूसरे शरीरसे स्वार्थ पूर्णार्थक प्रीति वा शरीरके अनुगामी मनकी मनसे प्रीति वा बुद्धिकी अपने विषयसे प्रीति किसको सच्चा प्रेम कहोगे? इन सबसे आत्माका सिवाय साक्षी भावके संसर्ग नहीं। असल प्रेम आत्माका अपने स्वरूपसे है, चाहे अपने शरीरमें स्थित वा दूसरेके शरीरमें, वा इष्टदेवमें, वा सारे संसारमें व्यापक भावमें इस एकताके अनुभवको ही सच्चा प्रेम जानो। यदि किसीने शरीरके सम्बन्धसे प्रीति की हो, तो वह तुच्छ, निन्द्य व असत्य है। संसारी प्रमी भी उच्च पदपर पहुंचकर यही कहते हैं—मैं तू हुई, तू मैं हुई,—मैं तूसे भी जाती रही,—यही सच्चा प्रेम है, जब शारीरिक द्वैतभाव छूटकर आत्मीय एकताका उदय हो। संसारी प्रेम-

में सबसे बढ़कर माता-पिताका प्रेम तथा स्त्री-पुरुषोंका प्रेम है, परन्तु और प्रेमियोंसे इनमें अधिक यह दीखता है कि वे हृदयसे हृदय लगाकर द्वैतभाव छोड़कर मिलते हैं। हृदयस्थान निज आत्माका है और ऐसे मिलनेसे आत्मिक एकताका विना जाने अनुभव करते हैं, और प्रेमसे मग्न हो जाते हैं। ज्ञानी इसको जानकर प्रेमको स्वच्छ करता हुआ आत्मानन्दको प्राप्त होता है। यही प्रेम भक्तजन अपने हृदयमें करके कृतार्थ होते हैं।

शास्त्रकारोंने भक्तिमार्गको तीन भागमें विभक्त किया है। प्रथम वैधी भक्ति, दूसरी रागात्मिका भक्ति और तीसरी परा भक्ति। जब गुरु और शास्त्रकी बताई हुई विधिसे अपने प्यारे इष्टदेव भगवान्‌का प्रेम करना सीखते हैं, उस पहली दशाकी भक्तिको वैधी भक्ति कहते हैं। हिन्दुगृहस्थके स्त्री-पुरुषके प्रेममें

भी इसका नमूना मिलता है। बाल्यावस्थामें वर कन्या पिता–माताके बताये हुए आचरणसे इस वैधी प्रेमको सीखते हैं। यह आदर्श हिन्दुस्थानमें है अन्यत्र नहीं। दूसरा अधिकार रागात्मिकाका है। जब एक प्रेमिक और प्रेमिकामें अतिप्रेम हो जानेपर भी वे अपने प्रियतम अथवा प्रियतमाके किसी २ अंगविशेष वा किसी २ भावविशेषमें अधिक मुग्ध होते हैं, उसी प्रकार जब भाग्यवान् भक्त अपने परमप्यारे इष्टदेवको किसी भावविशेषसे पूजा करना अधिक प्रिय समझता है और उस भावविशेषमें अधिक मग्न रहता है, तभी उसको रागात्मिका भक्ति कहते हैं। इसके शास्त्रकारोंने सात भेद किये हैं। दास्यभावसे उनकी पूजा, यथा हनुमानजीकी भक्ति, सखाभावसे उनकी पूजा, यथा अर्जुनकी भक्ति, पुत्रभावसे उनकी पूजा, जैसे यशोदाको भक्ति,

पतिभावसे उनकी पूजा, जैसे गोपिकाओं-की भक्ति, गुणकीर्त्तनसे उनकी पूजा, जैसे नारद व्यास आदिकी भक्ति, आत्मनिवेदनसे उनकी पूजा जैसे वलिकी भक्ति और तन्मय-होकर उनकी भक्ति जैसे शिवमें विष्णुकी और विष्णुमें शिवकी भक्ति। यही अन्तिम-भक्ति साक्षात् मुक्तिका स्वरूप है।

सबसे उन्नत भक्तिका स्वरूप पराभक्ति कहाता है। उस समय द्वैतभावका नाश हो जाता है। तब चलते, फिरते, उठते, वैठते, जागते, सोते भक्त अपने प्यारेको ही देखता है। स्वयं भी अपने प्यारेका स्वरूप वन जाता है। तव वह कहता है, जिधर देखूं, उधर तू ही तू है। उस समय भक्ता-ग्रगण्यके लिये सब संसार ही अपना हो जाता है। तब वह राग-द्वेषसे रहित हो जाता है। उसके सब प्रकारके द्वन्द्व मिट जाते हैं। वह जीव तब शिवरूप वन जाता

है। यही सब धर्मसाधनोंका फल है। यही योगको सच्ची समाधि है, यही भक्ति-रसका सच्चा स्वाद है और यही आत्मज्ञान-का परम अनुभव है।

ॐ तत्सत्।



भारतधर्म तथा महाशक्ति ।

इन नामोंसे प्रथम नामका हिन्दी साप्ताहिकपत्र और दूसरे नामका अंग्रेजी साप्ताहिकपत्र काशी-पुरीसे समस्त सनातनधर्मावलम्बियोंके मुखपत्र-रूपसे प्रकाशित होते हैं। भारतधर्मका वार्षिक मूल्य ३)॥ और महाशक्तिका वार्षिक मूल्य ४) है। सहृदय स्वदेशहितैषी हिन्दू नरनारी मात्रको इन पत्रोंका ग्राहक होना उचित है। वर्णाश्रमसंघके प्रतिनिधियोंको तो अवश्य ही इनका ग्राहक बनना चाहिये।

मैनेजर—सम्वादपत्र विभाग,
भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड,
जगतगञ्ज स्टेशन रोड, बनारस।

महामण्डल मैगजीन तथा निगमागम चन्द्रिका ।

प्रथम अंग्रेजी मासिकपत्र और दूसरा हिन्दी मासिकपत्र श्रीभारतधर्ममहामण्डलके मुखपत्ररूप-से प्रकाशित होते हैं और श्रीमहामण्डलके सभ्य और सभ्याओंको विना मूल्य मिलते हैं। सभ्य तथा सभ्या होनेके लिये केवल २॥) साल देना होता है। सभ्यगणके वारिसोंको समाजहितकारी-कोषसे यथेष्ट आर्थिक सहायता भी मिलती है। पत्रव्यवहार करनेका पता—

जनरल सेक्रेटरी श्रीभारतधर्म महामंडल,
जगतगंज, बनारस।

श्रीमत् स्वामी दयानन्दजी प्रणीत पुस्तकें ।

श्रीधर्मकल्पद्रुम प्रथमखण्ड	२)
” द्वितीयखण्ड	१॥)
तृतीयखण्ड	२)
चतुर्थखण्ड	२)
पञ्चमखण्ड	२)
षष्ठखण्ड	१॥)
सप्तमखण्ड	२)
प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत प्रथम भाग	२)
” ” द्वितीय भाग	२)
साधन चन्द्रिका	१॥)
शास्त्रचन्द्रिका	१॥)
धर्मचन्द्रिका	१)
नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत	१)
आर्य गौरव	॥)
आचार चन्द्रिका	॥)
नीतिचन्द्रिका	॥)
धर्मप्रश्नोत्तरी	।)
योगदर्शन हिन्दी भाष्य सहित	२)
गीतार्थचन्द्रिका (विस्तृत हिन्दी भाष्य सहित)	१)
” द्वितीयखण्ड	१)

प्राप्तिस्थान—

भारतधर्मसिण्डिकेट लिमिटेड्,

स्टेशनरोड, बनारस ।